12

सांख्य दर्शन

प्रस्तावना

इस जगत् में सभी सुख की इच्छा करते हैं और दु:ख के नाश के लिए प्रवृत्त होते हैं। सुख सविषयक और निर्विषयक होता है। स्वादिष्ट भोजन से उत्पन्न सुख सविषयक है, वहाँ भोज्य पदार्थ विषय हैं। सुषुप्तिकाल में जो सुख उत्पन्न होता है, वह निर्विषयक सुख है। न ही सुषुप्ति में कोई विषय आभसित होता है। जाग्रतकाल में बाह्य स्थूल घट आदि विषय अनुभूत होते हैं, और स्वप्नकाल में मन द्वारा निर्मित गृह, घट आदि अनुभूत होते हैं। परन्तु सुषुप्ति में बाह्य विषय इन्द्रियाँ और मन होते हैं। अत: तब आयासाभाव से जीव सुख का अनुभव करता है। सविषयक सुख ही काम है, और निर्विषयक, निरतिशय सुख ही मोक्ष है। सुख-लाभ के लिए धन-ऐश्वर्य अपेक्षित है और कुछ नियम अनुसर्तव्य हैं। धन-ऐश्वर्य ही अर्थ पद द्वारा कहा जाता है। जो नियम मनुष्य जीवन में सुख को उत्पन्न करते हैं, वे ही धर्म पद द्वारा कहे जाते हैं। एवं पुरूष का अर्थ प्रयोजन सुख है, उसके सुख के उपाय धर्म और अर्थ हैं।

अत: धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चार पुरूषार्थ हैं। इनमें काम और मोक्ष मुख्य पुरूषार्थ हैं और धर्म और अर्थ उपायभूत होने से गौण पुरूषार्थ हैं। प्रत्येक पुरूषार्थ के प्रतिपादन के लिए शास्त्र प्रणीत हैं। अत: मनु आदि प्रणीत धर्मशास्त्र, कौटिल्य आदि प्रणीत अर्थशास्त्र और वात्स्यायन आदि प्रणीत कामशास्त्र लोक में दिखते हैं। भारतीय दर्शन ही मोक्ष प्रतिपादक शास्त्र हैं। भारतीय दर्शन आस्तिक और नास्तिक के भेद से दो प्रकार के हैं। न्याय-वैशेषिक-सांख्य-योग-पूर्वमीमांसा-उत्तरमीमांसा दर्शन वेद का प्रामाण्य स्वीकार करते हैं, अत: ये आस्तिक दर्शन हैं। इनमें पुन: न्याय-वैशेषिक, सांख्य-योग, और पूर्व उत्तर मीमांसा के सिद्धान्त प्रतिपादन में साम्य दिखाई देता है। अत: प्रत्येक युगल समान तन्त्र कहलाता है।

सांख्य मत में दु:ख की आत्यन्तिक और ऐकान्तिक निवृत्ति मोक्ष है। दु:ख की आात्यन्तिक

निवृत्ति अर्थात् दु:ख के नाश के बाद पुन: उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, दु:ख की ऐकान्तिक निवृत्ति अर्थात् दु:ख का नाश अवश्य ही होता है। दु:ख तीन प्रकार का है- आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक। शरीर में वात, पित्त, कफ के वैषम्य के कारण रोग आदि की उत्पत्ति होती है, रोगों के द्वारा दु:ख उत्पन्न होता है। काम, क्रोध, लोभ आदि के कारण मानसिक दु:ख उत्पन्न होता है। शारीरिक और मानसिक दु:ख आध्यात्मिक है, मनुष्य-पशु-स्थावर आदि द्वारा उत्पन्न दु:ख आधिभौतिक है, यक्ष-राक्षस-ग्रह आदि के कारण जो दु:ख उत्पन्न होता है, वह आधिदैविक है। उक्त दु:ख त्रय की आत्यन्तिक और ऐकान्तिक निवृत्ति पान-भोजन-मणि-मन्त्र आदि द्वारा नहीं होती है। दु:ख का सामयिक नाश इनके द्वारा होता है, परन्तु पुन: कालान्तर में दु:ख उत्पन्न होता है। वेद प्रतिपादित याग आदि के द्वारा भी दु:ख की निवृत्ति नहीं होती है। याग आदि में पशुवध होता है, और उसके द्वारा पाप उत्पन्न होता है। याग (यज्ञ) से जो फल उत्पन्न होता है, और उसका नाश होता है। स्वर्ग जाने पर भी पुण्य के नाश होने पर स्वर्ग से पुन: वापसी श्रुतियों और भगवद्गीता में सुने गये है। यज्ञ द्वारा जो फल उत्पन्न होता है, वह निरतिशय नहीं होता है, याग के फलों में भी कुछ उत्कृष्ट और कुछ निकृष्ट हैं। अत: लौकिक उपायों के द्वारा और वैदिक कर्मकाण्ड द्वारा दु:ख का एकान्त और अत्यन्त नाश नहीं होता है। अत: प्रकृति पुरूष के विवेक ज्ञान का प्रतिपादक सांख्यशास्त्र पुरूष का दु:ख निवृत्ति के लिए आचार्य कपिल द्वारा उपदिष्ट है।

इस पाठ में हम आदि में सांख्य दर्शन में आचार्य परम्परा की आलोचना करते हैं। वहाँ से सांख्य सम्मत पदार्थों प्रमाणों और प्रपञ्च का अवलोकन करते हैं। कार्य कारण के विषय में प्रसिद्ध सांख्यों का सिद्धान्त सत्कार्यवाद की भी यहाँ आलोचना की जायेगी।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़कर आप सक्षम होंगे:

- सांख्य दर्शन के आलोचना की आवश्यकता को जान पाने में;
- सांख्य दर्शन में आचार्य परम्परा को जान पाने में;
- सांख्य मत में बन्ध-मोक्ष को जान पाने में;
- सांख्य मत में प्रकृति सत्व में प्रमाण और प्रकृति स्वरूप को जान पाने में;
- प्रकृति स्वरूपभूत गुणत्रय को जान पाने में;
- पुरूष के होने में प्रमाण, पुरूष-स्वरूप और पुरूष बहुत्व को जान पाने में;
- सांख्य सम्मत पच्चीस तत्व और उनके वर्गीकरण को जान पाने में;
- सांख्य अभिमत प्रमाण को जान पाने में;
- सत्कार्यवाद को जान पाने में।

टिप्पणी

12.1 सांख्य पद का अर्थ-

'संख्यायते अनया' इस विग्रह में सम् उपसर्गपूर्वक व्यक्तायां वाचि विद्यमान होने के कारण चक्ष् धातु के कारण में अङ् प्रत्यय में, स्त्रीत्व विवक्षा में टाप् संख्या शब्द निष्पन्न होता है। संख्या शब्द का अर्थ ही सम्यक् विचार है। अमरकोश में कहा गया है- ''चित्रभोगा मनस्करश्चर्चा संख्या विचारणा'', और ''संख्यावान् पण्डितः कविः''। संख्या इसमें सम्यक् विचार है, यह विग्रह संख्या शब्द से अण् प्रत्यय में सांख्य शब्द निष्पन्न होता है। सम्यक् विचार इतर दर्शनों में भी सुलभ है, यह कहा जाता है कि यह सांख्य शब्द योगरूढ़ है, इस शब्द से सम्यक्-विचारयुक्त कपिल प्रणीत शास्त्र ही बोधित है। 'सम्यक् ख्यायते प्रकाश्यते वस्तुतत्वम् अनया इति संख्या', इस विग्रह में निष्पन्न संख्या शब्द का सम्यक् ज्ञान, यह अर्थ भी श्रीधर स्वामी आदि प्राचीन आचार्यों द्वारा कल्पित है। अतः संख्या सम्यक् ज्ञानं, सा अस्ति यत्र तत् सांख्यम्', यह अर्थ भी सम्भव है। और यहाँ सम्यक् ज्ञान से प्रकृति-पुरूष का विवेक, विवेक-ख्याति, विवेक बुद्धि अथवा सत्व पुरूषान्यताख्याति का बोध होता है। सांख्य दर्शन में पच्चीस तत्व प्रपञ्चित हैं। एवम् पच्चीस संख्या के साथ सम्बन्ध होने के कारण इस शास्त्र का सांख्य नाम है, ऐसा कुछ मानते हैं। महाभारत में कहा गया है- संख्यां प्रकुर्वते चैव प्रकृतिं च प्रचक्षते। तत्वानि च चतुर्विंशत् तेन सांख्यं प्रकीर्तितम्।। इस पक्ष में संख्या शब्द से अण् प्रत्यय में सांख्य शब्द निष्पन्न होता है। इतर दर्शनों में भी विविध संख्यक तत्व प्रतिपादित है, अतः यहाँ सांख्य पद योगरूढ़ कपिल द्वारा प्रणीत शास्त्र का ही बोधक है, यह वक्तव्य है।

12.2 सांख्य दर्शन में आचार्य परम्परा

महर्षि कपिल सांख्य दर्शन के प्रवक्ता है। कपिल ने सांख्यसूत्र लिखा। आज जो सांख्य सूत्र प्राप्त होते हैं, वे कपिल विरचित नहीं है, ऐसा विद्वान कहते हैं। कपिल प्रणीत सूत्रग्रन्थ ही लुप्त हो गया है। सांख्य शास्त्र के प्रणेता के रूप में कपिल का नाम श्रुति, महाभारत और भागवत में प्राप्त होता है। कपिल ने अपने शिष्य आसुरि को और आसुरि ने अपने शिष्य पञ्चशिख को सांख्य तत्व का उपदेश दिया। इनके ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते हैं। ईश्वरकृष्ण विरचित सांख्यसप्तति अथवा सांख्यकारिका अभी सुलभ है, उसमें सांख्यमत कारिका द्वारा समुस्थित हैं। एवम् गौड़पाद की सांख्यकारिका भाष्य, विज्ञानभिक्षु कृत सांख्यप्रवचन भाष्य और सांख्य सार, अनिरूद्ध की सांख्यप्रवचनसूत्रवत्ति, माठराचार्य की माठरवृत्ति, अज्ञात द्वारा लिखित युक्ति दीपिका, सीमानन्द का सांख्यतत्वविवेचन, भावगणेश का सांख्यतत्वयथार्थदीपन, वाचस्पति मिश्र की सांख्यतत्वकौमुदी इत्यादि ग्रन्थ अभी समुपलब्ध हैं।

इसके अतिरिक्त बहुत से सांख्यशास्त्रकारों के नाम स्मृतियों, महाभारत के शान्तिपर्व द्वारा ज्ञात होते हैं। इनके सांख्यशास्त्र अब लुप्त हैं। वे हैं- विन्ध्यवासी, वार्षगण्य, जैगीषण्य,

वोदु, असितदेवल, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, भृगु, शुक्र, काश्यप, पराशर, गर्ग, हारीत, अगस्त्य, पुलस्त्य इत्यादि।

पाठगत प्रश्न 12.1

1. सांख्य दर्शन का समानतन्त्र दर्शन क्या है?
2. सांख्य दर्शन में मोक्ष का क्या नाम है?
3. दु:ख की आत्यन्तिक और ऐकान्तिक निवृत्ति नाम क्या है?
4. दु:ख कितने प्रकार का है, और वह क्या है?
5. आध्यात्मिक दु:ख क्या है?
6. सांख्य पद की व्युत्पत्ति क्या है?
7. सांख्य पद का क्या अर्थ है?
8. सांख्य दर्शन के प्रवक्ता कौन हैं?
9. कपिल के शिष्य कौन, और उनके शिष्य कौन हुए?
10. सांख्यकारिका का अपर नाम क्या है?
11. सांख्य प्रवचन भाष्य किसके द्वारा लिखा गया है?
12. अनिरूद्ध कृत ग्रन्थ का नाम क्या है?

12.3 सांख्य मत में बन्ध और मोक्ष

सांख्य मत में प्रकृति और पुरूष दो तत्व होते हैं। और जो अनादि विनाश रहित है, वह नित्य है। पुरूष असन्न, चेतन और निष्क्रय है। पुरूष दो प्रकार है- बद्ध और मुक्त। प्रकृति जड़ है, वह ही जड़ प्रकृति का उपादान है। प्रकृति से बुद्धि तत्व उत्पन्न होता है। बुद्धि भी जड़ है। प्रकृति के कार्य बुद्धि में धर्म, अधर्म विद्यमान होते हैं, धर्म-अधर्म जनित सुख-दु:ख भी बुद्धि में ही होते हैं। एवम् दु:ख सम्बन्ध रूप बन्ध और दु:खाभावरूप मोक्ष बुद्धि में ही सम्भव होता है। जब पुरूष भ्रम के कारण बुद्धि तत्व के साथ अपना तादात्म्य अनुभव करता है, तब बुद्धिगत सुख, दु:ख स्वयं में आरोपित करके 'मैं दु:खी', 'मैं सुखी हूँ', ऐसा चिन्तन करता है। तब पुरूष आत्मा को बद्ध मानता हैं। और बुद्धि तत्व के साथ पुरूष का सम्बन्ध वास्तविक नहीं है। स्वच्छ बुद्धि पर चेतन पुरूष का प्रतिबिम्ब मात्र ही सम्बन्ध बोध्य होता है। जब पुरूष बुद्धि के साथ आत्मा का भेद जानता है, तब बुद्धि निवृत्त होती है, तब बुद्धिगत सुख, दु:ख

टिप्पणी

पुरूष अनुभव नहीं करता है। पुरूष तब स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। पुरूष नित्य मुक्त है, उसकी स्वरूप में अवस्थिति ही मोक्ष है। और मोक्ष में कारण बुद्धि-पुरूष का विवेक ज्ञान है। वही सत्वपुरूष अन्यताख्याति, सत् असत्ख्याति, विवेकी इत्यादि पदों द्वारा कहा जाता है।

12.4 प्रकृति के होने में प्रमाण

'प्रकरोति इति प्रकृति'। प्रकृति ही अखिल प्रपञ्च का कारण है। सत्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था ही प्रकृति है, ऐसा सांख्यसूत्र में कहा गया है। सत्व, रजस् और तमस्, इन तीनों गुणों से विशिष्ट यह प्रकृति कारण रहित है। प्रकृति के भी कारण की कल्पना में, प्रकृति रूपी कारण का भी क्या कारण है, उस कारण का भी पुनः क्या कारण है, ऐसी अनवस्था होगी। अतः यह मूल प्रकृति कही जाती है, इसका कारण नहीं है। मूल में मूलाभाव के कारण अमूल मूल है, सांख्यसूत्र इसमें प्रमाण है। प्रकृति है तो उसकी उपलब्धि कैसे नहीं होती है, इस पर कहा जाता है कि प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु प्रत्यक्ष गोचर नहीं होते हैं उसी प्रकार। प्रकृति ही गुणत्रयात्मक प्रपञ्च के कारण रूप में सामान्यतोदृष्ट अनुमान द्वारा सिद्ध होती है। और सांख्यकारिका में उक्त है- सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात् कार्यतस्तदुपलब्धेः।

प्रकृति की सिद्धि के लिए ईश्वरकृष्ण द्वारा सांख्यकारिका में कुछ हेतु समुपस्थित किये गए हैं। वे हैं- भेदों के परिमाण से, समन्वय से, शक्ति की प्रवृत्ति से, कारण-कार्य विभाग से, अविभाग से और वैश्वरूप का। बुद्धितत्व कार्य परिमित और अव्यापी है। अतः उनके कारण अव्यक्त है, जो व्यापी होता है। दृश्यमान सभी कार्य सुख, दुःख, मोहात्मक होने से सत्व, रजस् और तमस् गुणात्मक होते है, अतः इस कार्य का कोई भी सजातीय कारण है, यह सिद्ध होता है। सांख्य मत में शक्ति विशिष्ट कारण से ही कार्य की अभिव्यक्ति होती है। यथा तिल से तैल उत्पन्न होता है क्योंकि तिल में तेल उत्पादन करने की शक्ति है। बालु (रेत) द्वारा तेल की उत्पत्ति नहीं होती है, बालु में तैलोत्पादन की शक्ति के अभाव के कारण। महत् आदि कार्य के दर्शन से कार्योत्पादानुकूल शक्ति विशिष्ट कारण अव्यक्त है, यह आपत्ति है। उत्पत्तिकला में सत् के ही कार्य का कारण से विभाग का आविर्भाव होता है। विश्व रूप ही वैश्वरूप है। और प्रलयकाल में विश्वरूप का (सकल कार्य का) कारण में अविभाग (तिरोभाव) होता है। अतः कार्य महत् आदि का आविर्भाव-तिरोभाव दर्शन से होता है, वह कारण अव्यक्त है, ऐसा अनुमित होता है। ईश्वरकृष्ण द्वारा सांख्यकारिका में कहा जाता है-

''भेदानां परिमाणात् समन्वयात् शक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कार्यकारणविभागाद् वैश्वरूप्यस्य॥

12.5 प्रकृति स्वरूप

सांख्य दर्शन में प्रकृति ही कारण होने से 'अव्यक्त' कही जाती है। प्रकृति के कार्य

बुद्धि तत्व आदि का प्रकृति की अपेक्षा स्थूल होने से 'व्यक्त', यह अभिधा है। सांख्यकारिका में व्यक्तों और अव्यक्त के सादृश्य-वैसादृश्य-निरूपण काल में प्रकृति के स्वरूप की आलोचना है। प्रकृति नित्य कारण रहित है। स्वयं से उत्पन्न बुद्धि आदि में व्याप्त रहती है। अतः प्रकृति व्यापिनी है। प्रकृति में परिणामरूप क्रिया होती है, परन्तु परिस्पन्द रूप क्रिया नहीं होती है। अतः प्रकृति क्रियारहित है, ऐसा सांख्यवृद्ध कहते हैं। और वह प्रकृति एक सकल कार्य की आधारभूत है। प्रकृति का अनुमान उसके कार्य के दर्शन से सम्भव होता है, अतः प्रकृति अनुमेय है। प्रकृति कारणान्तर के अनुमान में लीन नहीं होती है। और प्रकृति अवयव संयोग विशिष्ट सावयवी भी नहीं होती है। महत् आदि के द्वारा प्रकृति का संयोग नहीं होता, महत् आदि के साथ प्रकृति का तादात्म्य होने के कारण। कार्य-कारण का संयोग नहीं होता है। प्रकृति में सत्व-रजस्-तमस् का संयोग होता है, ऐसा कहा गया है। संयोग अप्राप्त पूर्विका प्राप्ति है, जैसे हाथ-पुस्तक भिन्न है, उनका संयोग सम्भव होता है। प्रकृति में सत्व-रजस्-तमस् का सम्बन्ध नित्य है, अतः उनका परस्पर अन्विततता का अभाव सम्भव नहीं होता है, अतः अनित्य संयोग भी प्रतिपादित नहीं हो सकता। उसके कारण प्रकृति का सावयवत्व नहीं है। और प्रकृति कार्य जनन (उत्पन्न) में स्वतन्त्र है। उससे सांख्यकारिका में कहा जाता है-

''हेतुमदनित्यमव्यापी सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्॥''

और वह अव्यक्त सुख, दुःख, मोहात्मक है। सत्व गुण से सुख, रजोगुण से दुःख और तमो गुण से मोह उत्पन्न होते हैं। अव्यक्त का स्वयं से भेद नहीं है। न ही राम राम से भिन्न होता है। अव्यक्त समुत्पन्न महत् आदि भी अव्यक्त से भिन्न नहीं होते हैं। सांख्य मत में कार्य-कारण का तादात्म्य (अभेद) स्वीकार किया जाता है। उससे कारण अव्यक्त का कार्य महत् आदि से भेद नहीं होता है। अतः अव्यक्त अविवेकी है। और अव्यक्त ग्राह्य बाह्य विषय नहीं है, न ही आन्तरिक विज्ञानकार है, ऐसा चिन्तनीय है। उस अव्यक्त और उसके कार्यों का ज्ञान अनेक पुरूषों का होता है, वह ही सामान्य (साधारण) है। अव्यक्त ही अचेतन और अखिल जगत का कारण है। अतः अव्यक्त प्रसवधर्मी भी होता है। अतः ईश्वरकृष्ण द्वारा सांख्यकारिका में कहा गया है-

''त्रिगुणम् अविवेकि विषयः सामान्यम् अचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा च पुमान्॥''

12.6 प्रकृति के गुणत्रय

प्रकृति गुणत्रयात्मिका है। सत्व-रजस् और तमस् की साम्यावस्था ही प्रकृति है। सत्व, रज और तम यहाँ गुण हैं, ऐसा पूर्व में प्रतिपादित है। सत्व गुण से सुख, रजो गुण से दुःख और तमो गुण से मोह उत्पन्न होते है, ऐसा भी पहले कहा गया है। सांख्यवृद्धों के द्वारा कहा जाता है -

टिप्पणी

गुणसाम्यं प्रधानं स्याद् गुणाः सत्वं सजस्तमः।
सुख दुःखमोहरूपं दृश्यते हि स्फुटं जगत्॥

यह यहाँ अवधेय है कि प्रकृति इन गुणों का आधार नहीं है। नैयायिक स्वीकार करते हैं कि द्रव्य में गुण समवाय सम्बन्ध से रहते हैं। सत्व आदि उस प्रकार के गुण नहीं है। प्रकृति रूप द्रव्य में गुण समवाय सम्बन्ध से नहीं रहते हैं, यह चिन्तनीय है। वे प्रकति के धर्म नहीं है। सत्व-रजस-तमस् प्रकृति के स्वरूपभूत हैं, प्रकृति सत्व-रजस्-तमस् व्यतिरेक से नहीं है। इसीलिए सांख्यसूत्र में- 'सत्वादीनाम् अतद्धर्मत्वं तद्-रूपत्वात्'। सत्व आदि नैयायिक सम्मत गुणवत् नहीं होते हैं। सत्व-रजस्-तमस् के संयोग, विभाग आदि सम्भव हैं, इनमें लघुत्व-चलत्व-गुरूत्व आदि धर्म हैं। गुणों में संयोग आदि गुण अथवा लघुत्व आदि गुण नैयायिक स्वीकार नहीं करते हैं। अतः सत्व-रजस्-तमस् द्रव्य ही हैं। पुरूष को बन्धन में करते हैं, यह हेतु के वे गुण हैं, ऐसा कहते हैं, यथा गुणों के द्वारा (रज्जु के द्वारा) हाथी, गाय आदि का बन्धन होता है, उसी प्रकार। गुणों में सत्व ही लघु प्रकाशक है। अधोगमन से व्यतिरिक्त ऊर्ध्व (ऊपर जाना) गमन और तिर्यग्गमन (टेढ़ा चलना) लघुता के कारण से होता है।

अतः अन्त स्थित सात्विक ज्ञानेन्द्रियाँ विषय देश को जाकर भी विषय को प्रकाशित करने में समर्थ होती हैं। रजो उपष्टम्भक (संल्लेयजनक) और चल होता है। रजो गुण ही अवसन्न शिथिल निष्क्रिय सत्व, तमस को स्व-स्व कार्य में प्रवृत्त करता है। उपष्टम्भक का अर्थ प्रवर्तक है। और रजस् सक्रिय होने से चल है। तमस् गुरूत्व विशिष्ट और आवरक है। रजस् के चलत्व में और सत्व के प्रकाशकत्व में तमस् ही बाधक है। अन्यथा सभी वस्तुएँ रजस् के कारण सदा सक्रिय ही होंगी, और सत्व गुण वश सभी सर्वज्ञ होंगे। ये गुण भिन्न धर्मी तथा परस्पर विरोधी हैं। तथापि ये गुण पुरूष के भोग और अपवर्ग के लिए मिलकर कार्य को उत्पन्न करते हैं। यथा दीप में बत्ती, तेल और अग्नि परस्पर विरूद्ध होते है, तथापि वे मिलकर प्रकाश रूप कार्य को सम्पादित करते हैं, वैसे ही सत्व, रजस्, तमस् परस्पर विरूद्ध होने पर भी मिलकर रूप, प्रकाश कार्य को करते हैं। इसीलिए सांख्यकारिका में कहा जाता है-

''सत्वं लघु प्रकाशकमिष्टम् उपष्टम्भकं चलं च रजः।
गुरू वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥''

एवम् गुणत्रयात्मिका प्रकृति से गुणत्रयात्मक जगत् उत्पन्न होता है। सत्व, रजस्, तमस् परस्पर विरोधी हैं फिर एक पदार्थ में उनका होना कैसे सम्भव है तो कहा जाता है, एक ही रमणी (सुन्दरी) उसके पति के सुख का कारण होती है, उसकी सपत्नी के दुःख का करण होती है और जो उसकी अभिलाषा करता है परन्तु प्राप्त नहीं करता, उसके मोह का कारण होती है। इसी प्रकार एक ही वस्तु गुणत्रयात्मक होने से किसी के सुख का कारण, किसी के दुःख का कारण अथवा किसी के मोह का कारण होती है। ये गुण ही परस्पर अभिभूत होकर कार्य को उत्पन्न करते हैं। जब सत्व रजस् और तमस् से प्रबल होता है तब शान्तवृत्ति, जब रजस् सत्व और तमस् से प्रबल होता है

तब घोर वृत्ति और जब तमस् सत्व और रजस् से प्रबल होता है तब मूढ़ वृत्ति उत्पन्न होती है। ये गुण एक दूसरे की अपेक्षा करके कार्य को उत्पन्न करते हैं।

अत: ये एक-दूसरे पर (अन्योन्य) आश्रित होते हैं। सत्व ही प्रवृत्ति और नियम पर आश्रित होकर प्रकाश रूपी कार्य को सम्पन्न करता है, रजस् प्रकाश और नियम पर आश्रित होकर प्रवर्तन रूप कार्य करता है और तमस् ही प्रकाश और प्रवृत्ति पर आश्रित होकर नियम रूप कार्य करता है। परिणाम दो प्रकार है- सरूप परिणाम और विरूप परिणाम। सृष्टिकाल में विरूप परिणाम होता है तब गुण अन्योन्य आश्रित होकर कार्य उत्पन्न करते हैं, ऐसा प्रतिपादित है। प्रलयकाल में तो सरूप परिणाम होता है। सरूप परिणाम में कारण रूप द्वारा तत्वान्तर की अपेक्षा नहीं होती है। सदृश-परिणाम स्थल पर ये गुण परस्पर सहकारी होते है। सत्व, रजस्, तमस् गुण ही अन्योन्य सहचर है, कभी भी इनका परस्पर व्यभिचार दृष्ट है। अत: कहा जाता है-

प्रीत्यप्रीतिविषादात्मका: प्रकाशप्रवृत्तिनियमार्था:।
अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च गुणा:॥

पाठगत प्रश्न 12.2

1. सांख्य मत में दो नित्य तत्व क्या हैं?
2. कब नित्य मुक्त पुरूष आत्मा सुखी है अथवा दु:खी, ऐसा सोचता है?
3. मोक्ष का कारण क्या है?
4. प्रकृति क्या है? किसका नाम प्रकृति है?
5. कैसे प्रकृति प्रत्यक्ष द्वारा ग्रहण नहीं होती?
6. प्रकृति की सिद्धि के लिए सांख्यकारिका में ईश्वरकृष्ण द्वारा कौन से हेतु समुपस्थित हैं?
7. अव्यक्त कैसे व्यापी है?
8. कौन सा लिप्त प्रकृति को अनुमापता है?
9. क्या सत्व, रजस्, तमस् प्रकृति में आधार-आधेय भाव से रहते हैं?
10. सत्व गुण का क्या वैशिष्ट्य है?
11. रजा गुण का क्या वैशिष्ट्य है?
12. तमो गुण का क्या वैशिष्ट्य है?
13. परस्पर विरोधियों का भी सम्भूत होकर एक कार्यकारित्व में क्या उदाहरण है?

टिप्पणी

12.7 पुरूष सत्व में प्रमाण

प्रकृति के अस्तित्व के प्रति जैसे सांख्य दार्शनिकों के द्वारा प्रमाण प्रदर्शित हैं वैसे पुरूष की सिद्ध के लिए भी उन्होंने हेतुओं को उपस्थित किया। प्रकृति और उसके कार्यों से भिन्न पुरूष होता है क्योंकि प्रकृति और उसके कार्य सुख, दु:ख, मोहात्मक होने के कारण संघातरूप है। जगत् में दृश्यमान सभी संघात भी परार्थ ही होते हैं। जैसे शय्या, आसन इत्यादि संघात शरीर के प्रयोजन को साधते हैं। वैसे ही प्रकृति और उसके कार्य भिन्न हैं किन्तु अचेतन भिन्न के अनुमापक होते हैं। और यह पर: संघातरूप नहीं है, तथा कहा जाता है कि उस संघात की पुन: अपरार्थता, अपर (अन्य) की भी संघातत्व में उसकी भी परार्थता, यह अनवस्था होगी। अत: संघात से व्यतिरिक्त गुणत्रयहीन चेतन प्रकृति से विभिक्त कोई पुरूष नामक तत्व है। प्रकृति जड़ है। उसके अधिष्ठान रूप में भी पुरूष की सिद्धि होती है। पुरूष के सम्बन्ध के कारण ही प्रकृति सृजन करती है। प्रकृति के परिणाम के प्रति पुरूष का सम्बन्ध मात्र अपेक्षित है, वहाँ पुरूष का कर्तृत्व नहीं है। प्रकृति से आरम्भ होकर सभी कार्यों के सुख, दु:ख, मोहात्मक होने से सुख-दु:ख-मोह के भोक्ता के रूप में चेतन पुरूष स्वीकार्य है। शास्त्र कैवल्य के लिए ही प्रवृत्त हैं, शास्त्रकार और महर्षि में कैवल्य के लिए प्रवर्तित होते हैं। कैवल्य दु:खत्रय का अभाव है। प्रकृति अथवा उसके कार्यों का कैवल्य सम्भव नहीं होता है, उनके सुख-दु:ख-मोह स्वरूप के कारण। अत: कैवल्य उसे अतिरिक्त पुरूष का ही सम्भव है, अत: पुरूष स्वीकार करने योग्य है। सांख्यकारिका में उक्त है-

'संघात परार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययाद् अधिष्ठानात्।
पुरूषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्य॥''

12.8 पुरूष का स्वरूप

पुरूष नित्य और उत्पत्तिरहित है। पुरूष में गुणत्रय नहीं होते हैं। अत: यह त्रिगुण असंहत है। पुरूष ही चेतन है। उससे प्रकृति और उसके कार्यों से इसका महान भेद है। पुरूष ही विषयी है, पुरूष प्रकृति आदि विषय का साक्षात्कार करता है। प्रत्येक संघात से पुरूष भिन्न है, अत: पुरूष सामान्य है, यह नहीं कहा जा सकता है। पुरूष से कुछ उत्पन्न नहीं होता है। अत: यह प्रसवधर्मी नहीं है। पुरूष निष्क्रिय और स्वतन्त्र है। पुरूष ही चेतन और अविषय है, अत: पुरूष द्रष्टा और साक्षी है। गुणत्रय से रहित होने के कारण इसमें दु:खत्रय के अभाव से कैवल्य सिद्ध होता है। और पुरूष स्वरूप से सुख अथवा दु:खी नहीं होता है। अत: इसका उदासीनत्व अथवा माध्यस्थ सिद्ध होता है। और पुरूष विवेकित्व और अप्रसवधर्मीत्व के कारण अकर्ता है। और कहा जाता है-

तस्माच्च विपर्यासात्सिद्धं साक्षित्वमस्य पुरूषस्य।
कैवल्यं माध्यस्थ्यं द्रष्टृत्वम् अकर्तृभावश्च॥

12.9 पुरूष-बहुत्व

सांख्य मत में पुरूष अनेक हैं। कुछ पुरूष बद्ध हैं और कुछ मुक्त हैं। कैसे एक ही चेतन पुरूष स्वीकार नहीं किया जाता है- अद्वैत वेदान्त आदि के समान तो कहते हैं, एक ही पुरूष के होने पर एक पुरूष की उत्पत्ति में सभी देहधारियों की उत्पत्ति होगी, और एक पुरूष की मृत्यु पर सभी देहधारियों की मृत्यु होगी। एवं एक पुरूष के अन्धे होने पर सभी को अन्धता होगी। ऐसा नहीं होता है। अतः प्रत्येक शरीर में भिन्न पुरूष है, यह स्वीकार करने योग्य है। जन्म-मरण-इन्द्रियों की इस प्रकार की व्यवस्था के दर्शन से पुरूष बहुत्व स्वीकार किया जाता है। एवम् एक ही पुरूष है तो एक शरीर में प्राण रहने पर सभी शरीर प्राण-युक्त होते। वैसी शरीरों की प्रवृत्ति नहीं दिखती। अतः दोनों प्रवृत्तियों के अभाव के कारण से भी प्रत्येक शरीर में पुरूष भेद स्वीकार्य है। देहधारियों में भी मिथ्या भेद है। कुछ ऋषियों अथवा योगियों में सत्व गुण का आधिक्य दिखता है, मनुष्यों में अथवा मर्त्यवासियों में रजोगुण का आधिक्य दिखता है, तथा तिर्यग् योनियों अथवा गौ, अश्व आदि में तमो गुण का आधिक्य दिखता है। अतः गुणों के प्रत्येक शरीर में विपर्यय दर्शन से प्रत्येक शरीर में पुरूष भेद भी कल्पनीय है। अतः पुरूष बहुत्व सिद्धि के लिए ईश्वरकृष्ण द्वार सांख्यकारिका में कहा गया है-

जन्म मरणकरणानां प्रतिनियमाद् अयुगपत्प्रवृतेश्च।
पुरूष बहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव॥

12.10 सांख्य सम्मत पच्चीस तत्व

सांख्य दर्शन में पच्चीस तत्व स्वीकृत हैं। वे हैं- पुरूष, प्रकृति, महत् तत्व, अहंकार, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध ये पाँच तन्मात्राएँ, आकाश-वायु-तेज-जल-पृथिवी, ये पञ्चमहाभूत, श्रोत्र-त्वक्-चक्षु-रसन-घ्राण, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ, ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन।

12.11 जगत का सृष्टि-क्रम

त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही भोग्या है। भोग के द्वारा ही प्रकृति सार्थकता को जाती हैं परन्तु प्रकृति स्वयं अपना भोग नहीं कर सकती है। अतः प्रकृति भोक्त पुरूष की अपेक्षा करती है। और पुरूष स्वयं के कैवल्य के लिए प्रकृति की अपेक्षा करता है। प्रकृति-पुरूष के विवेक ज्ञान द्वारा सत्व पुरूष की अन्यताख्याति ही मोक्ष है। ज्ञान बुद्धि तत्व अथवा महत् तत्व का परिणाम है। निरन्तर श्रवण-मनन-निदिध्यासान द्वारा महत् तत्व का परिणाम विशेष ही तत्व ज्ञान विवेक ख्याति पद का वाच्य है। अतः महत् तत्व रूप में परिणति प्रकृति की अपेक्षा पुरूष की है। पुरूष न केवल मोक्ष के लिए, भोग के लिए वह

प्रकृति की अपेक्षा करता है। प्रकृति जब पुरूष की सविधि से आत्मा को भोग्य रूप में उपस्थापित करती है तब पुरूष का भोग होता है। पुरूष अनेक हैं, अतः प्रकृति पुरूष संयोग भी बहुत हैं। कुछ संयोग भोग के लिए कल्पित हैं, कुछ पुनः मोक्ष के लिए। एवं प्रकृति-पुरूष की परस्पर सापेक्षता, अथवा परस्पर उपकार्य-उपकारक-भाव होता है। एवं परस्पर प्रयोजन वश प्रकृति-पुरूष का संयोग होता है, और उस कारण से सृष्टि होती है। गुण त्रय की साम्यावस्था ही प्रकृति है, यह युक्त है। जब पुरूष संयोग के कारण प्रकृति में गुणों का वैषम्य उत्पन्न होता है, तब महत् आदि क्रम से जगत् उत्पन्न होता है। यहाँ उदाहरण रूप में पङ्ग्वम्धन्याय कहा है। अरण्य (वन) में लंगड़ा (व्यक्ति) और अन्धा (व्यक्ति) परिजनों द्वारा परित्याग दिये जाते हैं। लंगड़ा व्यक्ति गमन में असमर्थता वश अरण्य से नहीं आ सकता और अन्धा व्यक्ति मार्ग को देखने में असमर्थ होने पर अरण्य के बाहर जाने में समर्थ नहीं होता। जब अन्धा व्यक्ति लंगड़े व्यक्ति को अपने कंधो पर लेकर/बैठाकर आगे चलता है और पङ्गु ने कन्धे पर स्थित होकर मार्ग निर्दिष्ट किया तब वे वन से आकर गाँव-प्राप्ति में समर्थ हुए। इसी तरह प्रकृति-पुरूष पङ्गु और अन्धे के समान परस्पर सहायता के द्वारा अपने-अपने उद्देश्य के साधने में समर्थ होते हैं। और ईश्वरकृष्ण द्वारा सांख्याकारिका में कहा जाता है-

पुरूषस्य दर्शनार्थं कैवल्यार्थं तथा प्रधानस्य।
पङ्ग्वन्धवदुभयोरपि संयोगस्तत्कृतः सर्गः।।

प्रकृति-पुरूष के संयोग से आदि में प्रकृति से महत् तत्व उत्पन्न होता है। महत् तत्व बुद्धि है, यह अर्थान्तर है। महत् तत्व से अहंकार उत्पन्न होता है। सात्विक (सत्व गुण प्रधान) अहंकार से चक्षु-श्रोत्र-घ्राण-रसन-त्वक् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक्-पाणि-पाद-पायु-उपस्थ कर्मेन्द्रियाँ और उभयात्मक मन उत्पन्न होते हैं। तामस् अहंकार से शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध पञ्च तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। पञ्च तन्मात्राओं द्वारा पुनः पञ्च महाभूत उत्पन्न होते हैं। इसीलिए शब्द तन्मात्र से शब्द गुण विशिष्ट आकाश, शब्द तन्त्रमात्र सहित स्पर्श तन्मात्र से शब्द-स्पर्श गुण विशिष्ट वायु, शब्द, स्पर्श तन्मात्र सहित रूप तन्मात्र से शब्द-स्पर्श-रूप गुण विशिष्ट तेज, शब्द-स्पर्श, रूप तन्मात्र सहित रस तन्मात्र से शब्द-स्पर्श-रूप-रस गुण विशिष्ट आप (जल), शब्द-स्पर्श-रूप-रस तन्मात्र सहित गन्ध तन्मात्र से शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध गुण विशिष्ट पृथिवी उत्पन्न होती है। अतः कहा जाता है-

प्रकृतेर्महाँस्ततोऽहंकारस्तस्माद् गणश्च षोडषकः।
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि।।

12.12 पच्चीस तत्वों का वैशिष्टय की दृष्टि से विभाग

पच्चीस तत्वों में प्रकृति, प्रकृति-विकृति, विकृति, अनुभय (न प्रकृति न विकृति), ये

कोटि चतुष्टय होता है। उनमें तत्वों में मूल प्रकृति प्रकृति ही है। उसका कोई कारण नहीं है। महत् तत्व, अहंकार, पञ्च तन्मात्र, ये सात तत्व प्रकृति-विकृति हैं। इनका कारण है, इनसे कार्य भी उत्पन्न होते हैं। यथा महत् तत्व की मूल प्रकृति कारण है, महत् तत्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है। अतः महत् तत्व अहंकार की प्रकृति और मूल तत्व की विकृति होती है। एवं अहंकार पञ्चमात्राओं में भी बोध्य है। ग्यारह इन्द्रियाँ और पञ्च महाभूत विकृति ही है। इनका करण है परन्तु इनके द्वारा कार्य उत्पन्न नहीं होते है। पुरूष तो उदासीन है। उसका कोई कारण नहीं है, अथवा उससे कुछ उत्पन्न नहीं होता। अतः पुरूष न प्रकृति, न विकृति है। वह न ही उभयरूप है, अतः अनुभयरूप है। अतः कहते हैं-

मूलप्रकृतिरविकृतिः महदादयः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरूषः॥

पाठगत प्रश्न 12.3

1. पुरूष की परार्थ प्रवृत्ति क्यों नहीं है?
2. प्रपञ्च के प्रति पुरूष का क्या कर्तव्य है?
3. कहाँ से पुरूष साक्षी है?
4. पुरूष बहुत्व के हेतु क्या हैं?
5. पञ्चमहाभूत क्या हैं?
6. पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ क्या हैं?
7. पञ्च कर्मेन्द्रियाँ क्या हैं?
8. प्रकृति की सृष्टि कैसे होती है?
9. प्रकृति से क्या उत्पन्न होता है?
10. महत् तत्व से क्या उत्पन्न होता है?
11. पञ्च तन्मात्रएँ किससे उत्पन्न होती है?
12. प्रकृति-विकृति अनुसार रूप सांख्य तत्व क्या है?
13. पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ किससे उत्पन्न होती हैं?

12.13 सत्कार्यवाद

महत् आदि कार्यों से ही उनके कारण प्रकृति का अनुमान होता है, यह पूर्व में प्रतिपादित

टिप्पणी

है। कुछ के मत में कार्यों से कारण मात्र का अनुमान होता है, कारण विशेष का अनुमान नहीं होता है। इसका अर्थ है- घट उत्पन्न हो तो, उसका कारण है, यह जाना जा सकता है परन्तु उसका क्या कारण है, यह नहीं जाना जा सकता। इसीलिए शून्यवादी बौद्ध असत् (शून्य से) से ही कार्य की उत्पत्ति कहते है।। अत: उनके मत में कार्य और करण का सजातीयत्व नहीं है। अत: कार्य से कारण विशेष का अनुमान नहीं किया जा सकता। अद्वैतवेदान्ती एक ही सत् चेतन ब्रह्म का विवर्त यह प्रपञ्च है, ऐसा विजातीय चेतन ब्रह्म ही कारण है। अत: यहाँ भी कार्य से सजातीय कारण का अनुमान नहीं किया जा सकता। सांख्य मत में कार्य से ही उसके सजातीय कारण विशेष का अनुमान सम्भव होता है। क्योंकि ये कारण से सजातीय कार्य की उत्पत्ति स्वीकार करते हैं।

कार्यकारण भाव विचारकाल में भारतीय दार्शनिकों ने स्वयं के मत उपस्थापित किये। क्योंकि नैयायिक ही असत्कार्यवादी हैं, उनके मत में कार्य कारण व्यापार से पूर्व अविद्यमान (असत्) ही कार्य कारण-व्यापार द्वारा उत्पन्न होता है। असत्कार्यवाद का अपर नाम आरम्भवाद है। अद्वैतवेदान्ती विवर्तवादी हैं। उनके मत में कार्यरूप अखिल प्रपञ्च कारण ब्रह्म पर आरोपित हैं और उसके कारण मिथ्या है। जैसे भ्रम के कारण शुक्ति में दिखता रजत मिथ्या है, उसी प्रकार। ब्रह्म का विवर्तभूत यह प्रपञ्च है। ये ही सत्कारणवादी हैं। सांख्यों का कार्यकारण सम्बन्धवाद सत्कार्यवाद कहलाता है। इस मत में कार्य कारण व्यापार से पूर्व कारण में सत् है (विद्यमान रहता है)। कारण में पूर्व अनभिव्यक्तता द्वारा विद्यमान कार्य की ही कारण व्यापार से अभिव्यक्ति होती है। जैसे तिल में पोषण आदि कारण व्यापार से पूर्व ही तैल होता है। तैल कारण व्यापार से पूर्व तिल में अभिव्यक्त रूप से नहीं रहता है। पोषण आदि व्यापार से तैल अभिव्यक्त होता है। मृत्तिका में भी चक्र भ्रमण आदि कार्य-व्यापार से पहले ही घट होता है, चक्र-भ्रमण आदि कारण व्यापार द्वारा पूर्व में मृत्तिका में अनभिव्यक्त रूप से स्थित घट की अभिव्यक्ति होती है। अत: कारण सजातीय ही कार्य उत्पन्न होता है। और उस कार्य से कारणानुमान अच्छी प्रकार से सम्भव होता है। और उससे सुख-दु:ख-मोहात्मक प्रपञ्च देखकर उसके सजातीय कारण त्रिगुणात्मक प्रधान (प्रकृति) का अनुमान किया जाता है।

सत्कार्य उपपादन करने के लिए पाँच हेतु सांख्यकारिका में उपन्यस्त हैं। (कारण व्यापार से पूर्व) कार्य (कारण में) सत्, असत् करण से, उपादान-ग्रहण से, सर्वसम्भव होने से, शक्त के शक्य करण से और कारणभाव से। सांख्य कहते हैं कि कारण व्यापार से पूर्व कारण में कार्य असत् हो तो वह कभी भी उत्पन्न नहीं किया जा सकता। रेत में कारण व्यापार से पूर्व तैल नहीं होता है, अत: किसी भी प्रकार से रेत से तैल उत्पन्न नहीं होता है। अत: असत् करण के कारण कार्य कारण व्यापार से पूर्व कारण में सत् (विद्यमान) होता है। उपादान कारण के साथ ग्रहण सम्बन्ध वश भी कार्य सत् है। कारण के साथ सम्बन्ध युक्त ही कार्य कारण व्यापार से पश्चात् उत्पन्न होता है। यदि कारण व्यापार से पूर्व कार्य कारण का सम्बन्ध कल्पित हो तो ही तब कार्य विद्यमान है, ऐसा सिद्ध होता है। दो सम्बन्धियों के अभाव में सम्बन्ध सम्भव नहीं होता है। अत:

उपादान के साथ सम्बन्ध युक्त कार्य की ही उत्पत्ति के कारण व्यापार से पूर्व कार्य सत् है। न ही सभी कारण से सभी कार्य की उत्पत्ति होती है। न ही तन्तुओं से घट अथवा मृत्तिका से पट उत्पन्न होता है। अत: कारण व्यापार से पूर्व ही कारण का कार्य के साथ सम्बन्ध होता है। अन्यथा जिस किसी कारण से जिस-किसी कार्य की उत्पत्ति है। अत: सर्वसम्भव अभाव रूपी कारण व्यापार से पूर्व कारण में कार्य होता है। शक्ति विशिष्ट कारण से ही कार्य उत्पन्न होता है। जैसे मृत्तिका में घट को उत्पन्न करने की शक्ति है, अत: मृत्तिका से घट उत्पन्न होता है। मृत्तिका में पट-उत्पादन शक्ति नहीं है, अत: मृत्तिका से पट नहीं उत्पन्न होता। कार्योत्पत्ति के अनुकूल शक्ति विशिष्ट कारण में विद्यमान वह शक्ति सर्वकार्यविषयिणी हो तो सभी वस्तु सभी से सम्भव होते।

मृत्तिका से भी पटोत्पत्ति होती। ऐसा नहीं होता है। यदि वह शक्ति विशिष्ट कार्यविषयिणी है, ऐसा स्वीकार किया जाता है तब प्रश्न होता है कि कारण व्यापार से पूर्व कार्य के अभाव स्वीकारने में कैसे शक्ति के विशिष्ट कार्य से सम्बन्ध प्रतिपादित किये जा सकते हैं। वस्तु के अभाव में सम्बन्ध सम्भव नहीं होता है। कारण व्यापार से पूर्व कार्य के अभाव में कारण में अविद्यमान कार्यविषयिणी शक्ति को स्वीकार नहीं किया जा सकता। अत: कार्य विषयक-शक्ति-विशिष्ट कारण का ही कार्योत्पादन से, कारण व्यापार से पूर्व ही कार्य है, ऐसा स्वीकार्य है। किसी कार्य का कारण अभिन्नत्व से कारण सत् हो (विद्यमान हो) तो उससे अभिन्न कार्य कैसे असत् होगा। अत: कार्य के कारण भाव से भी कार्य सत् है। सांख्यकारिका में कहा गया है-

असदकरणादुपादानगहणात् सर्वसम्भवाभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत् कार्यम्॥

12.14 सांख्य अभिमत प्रमाण

सांख्य में तीन प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम। प्रमाण प्रमा का कारण है। करण कारणविशेष है, जिसके व्यापार से अनन्तर कार्य की उत्पत्ति होती है। कुठार का उद्यमन आदि व्यापार से वृक्षच्छेदन रूप फल की उत्पत्ति होती है, अत: कुठार करण है। काष्ठच्छेदक वृक्ष आदि कारण मात्र है। सांख्य मत में प्रमा पौरूषेय बोध है। चैतन्य प्रतिबिम्बित बुद्धि की वृत्ति अथवा बुद्धि वृत्ति प्रतिबिम्बित चैतन्य प्रमा शब्द का अर्थ है। और प्रमाण विषयाकार चित्तवृत्ति है। इसीलिए घट के प्रत्यक्ष के समय में जब चक्षु इन्द्रिय घट से संबंधित होता है तब बुद्धि चक्षु द्वारा घट से सम्बन्ध प्राप्त होता है, और घटाकार द्वारा परिमित होता है। यह घटाकार चित्तवृत्ति ही प्रमाण है। जब स्वच्छचित्तवृत्ति में पुरूष प्रतिबिम्बित होता है तब घटाकार चित्तवृत्ति पुरूष-प्रतिबिम्बिविशिष्ट होती है। वही पुरूष प्रतिबिम्ब विशिष्ट घटाकार चित्तवृत्ति ही घटविषयी प्रमा है। और उसका स्वरूप है- 'मैं घट को जानता हूँ'। सांख्य मत में प्रमाण और प्रमा दोनों ही ज्ञानात्मक होते हैं। घटाकार चित्तवृत्ति ही घटज्ञान है, वह घटज्ञान तो प्रमाण है। घटज्ञान

के साथ जब पुरूष का सम्बन्ध होता है तब 'घट को जानता हूँ' यह अहम् पदोक्त पुरूष के साथ सम्बद्ध ज्ञान ही प्रमा होती है। अतः वाचस्पति मिश्र द्वारा सांख्यतत्व कौमुदी में प्रमा के विषय में कहा जाता है-

''बोधश्च पौरूषेयः फलं प्रमा, तत्साधनं प्रमाणम्''।

वास्पति मिश्र द्वारा प्रमाण का लक्षण उक्त है-

''असन्दिग्धविपरीतानधिगतविषया चित्तवृत्तिः''। वृक्ष कपि (वान) के संयोग से युक्त है अथवा नहीं इत्यादि सन्देह में अतिव्याप्ति के वारण के लिए असंदिग्ध है। अविपरीत पद का अर्थ अबाधितत्व है। भ्रमज्ञान में अतिव्याप्ति के निवारण के लिए यह पद दिया गया है। शुक्ति-रजत आदि भ्रमों में रजत आदि विषय उत्तर ज्ञान से बाधित होते हैं। अतः उनका बाधितत्व, न अबाधितत्व है। अनधिगत पद स्मृति में अतिव्याप्ति के निवारण के लिए प्रदान किया गया है। घट के प्रत्यक्ष काल में ही घट अधिगत होता है, अधिगत विषय के संस्कार से अधिगत विषय में स्मृति होती है। अतः संशय, भ्रम और स्मृति का प्रमाणत्व नहीं है। प्रमाणों की नीचे संक्षेप से आलोचना की गई है।

पृथिवी सुख आदि विषयों के साथ इन्द्रिय सम्बन्ध होने पर त्रिगुणात्मिका बुद्धि में तमो गुण का अभिभव होता है, और सत्व गुण का समद्रेक होता है। तब इन्द्रिय सन्निकृष्ट-विषयाकारा अन्तः करणवृत्ति उत्पन्न होती है। वही अध्वसाय ज्ञान है, ऐसा कहा जाता है। यह इन्द्रिय-सन्निकृष्ट-विषयाकारा चित्तवृत्ति ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। पुरूष प्रतिबिम्ब विशिष्ट यह चित्तवृत्ति ही प्रमा होती है।

लिङ्ग हेतु है। लिङ्गी लिङ्ग सम्बन्धी साध्य है। लिङ्ग पद से पक्ष का भी ग्रहण होता है। तब इसमें लिङ्ग है, यह लिङ्गी का अर्थ होता है। इसीलिए सभी को ध ूम-वह्नि का सहचर प्रत्यक्ष होता है। धूम व्याप्ति विशिष्ट व्याप्य और वह्नि व्यापक है। धूम-वह्नि की व्याप्ति धूम में होती है। एवं धूम-वह्नि का यह ज्ञान यदि व्याप्य व्यापक रूप है, और धूम पर्वत पर है, ऐसा वह्निविशिष्ट पर्वत का ज्ञान है, इन दोनों ज्ञान के पश्चात् जो ज्ञान अथवा चित्तवृत्ति उत्पन्न होती है, 'पर्वत वह्निमान है', वह अनुमान है। वहाँ पर उस ज्ञान में पुरूष प्रतिबिम्बि होने पर मैं वह्नि से युक्त पर्वत का अनुमान करता हूँ, ऐसा पुरूष सम्बन्धी जो ज्ञान है, वह ही अनुमिति है। और वह अनुमान तीन प्रकार का है- पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट।

आप्त वाक्य के श्रवण के पश्चात् जो वाक्यार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है, वह आगम प्रमाण है। और आप्त यथार्थवक्ता है, और वह भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सा- करणपाटव रूप दोष रहित है। इसीलिए ''साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च'' इत्यादि वाक्य से निर्गुणाभिन्न-केवलाभिन्न-चेत्रभिन्न-साक्षि-सत्ता रूप वाक्यार्थ का जो ज्ञान है, वाक्यार्थाकार अथवा चित्तवृत्ति है, वही आगम प्रमाण है। जब इस चित्तवृत्ति में पुरूष का प्रतिबिम्ब पड़ता है तब पुरूष प्रतिबिम्ब विशिष्ट वह चित्तवृत्ति प्रमा होती है। एवं तीन ही प्रमाण सांख्यों के द्वारा स्वीकार किये जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 12.4

1. शून्यवादियों ने किससे कार्योत्पत्ति को प्रतिपादित किया है?
2. अद्वैतवेदान्तियों के मत में प्रपञ्च किससे उत्पन्न होता है?
3. आरम्भवादी कौन हैं?
4. सांख्यों का कार्यकारणविषयक वाद क्या है?
5. सत्कार्यवाद का क्या सार है?
6. सांख्यकारिका में सत्कार्य को उपपादन करने के लिए कितनी युक्तियाँ समुपस्थित हैं, और वे क्या है?
7. सांख्य मत में कितने प्रमाण स्वीकार किये जाते हैं?
8. सांख्य मत में प्रमाण क्या है?
9. सांख्य मत में प्रमा क्या है?
10. आप्त कौन हैं?

पाठसार

सांख्यदर्शन ही आस्तिक दर्शन है, सांख्य सूत्रकार कपिल इस दर्शन के प्रवक्ता हैं। आसुरि-पञ्चशिख आदि कुछ प्राचीन सांख्याचार्य थे परन्तु इनके ग्रन्थ अब प्राप्त नहीं। ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका ही अब सांख्य दर्शन के आकर ग्रन्थ के रूप में स्वीकृत है। सांख्य ही दैतवादी हैं। इनके मत में मूल तत्व दो हैं- प्रकृति और पुरूष। प्रकृति गुणत्रयात्मिका, जड, और अखिल जगत् का उपादान और निमित्त है। पुरूष चेतन, अकर्ता, उदासीन है। पुरूष बहुत हैं। पुरूष-सम्बन्धवश गुणत्रयात्मिक प्रकृति से बुद्धि तत्व, बुद्धितत्व से अहंकार, सात्विक अहंकार से ग्यारह (11) इन्द्रियाँ, तामस अहंकार से पञ्च तन्मात्राएँ, और पञ्च तन्मात्र, पञ्च महाभूत, ये पच्चीस तत्व अथवा पदार्थ सांख्य में स्वीकृत हैं। इनमें मूल प्रकृति प्रकृतिरूप अथवा कारणरूप हैं। बुद्धि, अहंकार, पञ्च तन्मात्राएँ ही प्रकृति-विकृति हैं। एकादश (11) इन्द्रियाँ, और पञ्च महाभूत केवल विकृति हैं। और पुरूष अनुभयरूप है।

जब पुरूष बुद्धि तत्व के साथ आत्मा से अभिन्न माना जाता है, तब बुद्धिगत सुख, दु:ख आदि आत्मा में ही हैं, ऐसा मानने वाला सुखी और दु:खी होता हुआ बद्ध होता है (बन्धन में पड़ता है)। और जब पुरूष को बुद्धि तत्व के साथ स्वयं के भेद का ज्ञान होता है अर्थात् सत्व-पुरूष की अन्यताख्याति होती है तब बुद्धि का अवसान होता

टिप्पणी

है। और पुरूष स्वरूप में प्रतिष्ठित होता हुआ मुक्त होता है। और जिनका उस प्रकार का प्रकृति-पुरूष का भेद ज्ञान नहीं होता है वे बद्ध ही होकर प्रकृति से उत्पन्न विषयों का भोग करते हैं। अत: पुरूष की मुक्ति और भोग के लिए प्रकृति की अपेक्षा रहती है, पुरूष के भोगापवर्ग रूप प्रयोजन को साधने के लिए प्रकृति की और पुरूष की भी अपेक्षा होती है। अत: प्रकृति-पुरूष पङ्गु-अन्धे के समान परस्पर सहायता से प्रपञ्च सृष्टि रूप कार्य करता है। सृष्टि में पुरूष का अवदान उसी प्रकार प्रकृति के साथ उसके सम्बन्ध मात्र अथवा प्रकृति में उसका प्रतिबिम्ब मात्र है, पुरूष के निष्क्रियत्व और साक्षित्व के कारण।

सांख्य सुख-दु:ख-मोहात्मक प्रपञ्च रूप कार्य को देखकर उसके सजातीय त्रिगुणात्मक प्रकृति तत्व का अनुमान करते हैं। और गुणत्रय सत्व, रजस् और तमस् है। कार्य के कारण सजातीयत्व को प्रदर्शित करने के लिए सांख्यायिक सत्कार्यवाद को स्वीकार करते हैं। सांख्य मत में कार्य कारण व्यापार से पूर्व कारण में अनभिव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है, करण व्यापार द्वारा कार्य की अभिव्यक्ति मात्र होती है। एवं लयकाल में कार्य उपादान में अनभिव्यक्त रूप में रहता है। इसीलिए घट मृत्तिका में चक्र भ्रमण-मृत्तिका स्थापन-कुम्भकारकर्तृक घटरूप दान आदि व्यापार से पूर्व ही अनभिव्यक्त रूप में विद्यमान रहता है। चक्रभ्रमण आदि व्यापार द्वारा मृत्तिका से घट की अभिव्यक्ति होती है। कभी दण्ड द्वारा घट का नाश होने पर अपने कारण मृत्तिका में पुन: अनभिव्यक्त रूप से रहता है। सांख्याचार्य प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, प्रमाणत्रय को स्वीकार करते हैं। इनके मत में इन्द्रिय से घट का सम्बन्ध होने पर जो घटाकार चित्तवृत्ति होती है, वही प्रमाण है। अत: नैयायिक जिसको व्यवसाय ज्ञान अथवा प्रमा कहते हैं, वह सांख्यमत में प्रमाण है, प्रमा नहीं।

घटाकार चित्तवृत्ति में जब पुरूष प्रतिबिम्बित होता है, तब पुरूष सम्बन्धी जो ज्ञान होता है- ''मैं घट को जानता हूँ'', वही प्रमा है। और यह नैयायिकों के द्वारा अनुव्यवसाय कहा जाता है। एवं इन्द्रिय सन्निकृष्ट-विषयाकार चित्तवृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण है। वहाँ पर 'मैं विषय का प्रत्यक्ष करता हूँ', यह पुरूष सम्बन्धी ज्ञान प्रमा है। व्याप्य-व्यापक ज्ञान-और पक्ष ज्ञानपूर्वक जो ज्ञान है वह अनुमान प्रमाण है। उससे उत्पन्न अनुमिति, यह अनुव्यवसाय ही अनुमिति है। आप्त वाक्य से जो वाक्यार्थ ज्ञान होता है, वह आगम प्रमाण है। तद्विषयक पौरूषेय ज्ञान ही आगम प्रमा है।

पाठांत प्रश्न

1. आधिभौतिक दु:ख क्या है?
2. आधिदैविक दु:ख क्या है?
3. वाचस्पति मिश्र द्वारा लिखित सांख्य ग्रन्थ का नाम क्या है?

4. माठराचार्य द्वारा कौन सा ग्रन्थ रचित है?
5. महाभारत में उल्लिखित कुछ सांख्याचार्यों के नाम लिखिए।
6. पङ्गु-अन्ध-न्याय क्या है?
7. पुरूष के सत्व में क्या हेतु हैं?
8. पञ्च तन्मात्राएँ क्या हैं?
9. पृथिवी में क्या गुण हैं?
10. वायु में क्या गुण हैं?
11. तेज में क्या गुण हैं?
12. करण क्या हैं?
13. लिङ्ग पद का क्या अर्थ है?
14. लिङ्गी पद का क्या अर्थ है?
15. सांख्य में प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

उत्तर-12.1

1. योग दर्शन सांख्य दर्शन का समान तन्त्र दर्शन है।
2. दु:ख की आत्यन्तिक और ऐकान्तिक निवृत्ति मोक्ष है।
3. दु:ख की आत्यन्तिक निवृत्ति का अर्थ दु:ख के नाश के बाद पुन: उसकी उत्पत्ति नहीं होती है, दु:ख की ऐकान्तिक निवृत्ति का अर्थ दु:ख का नाश अवश्य ही होता है।
4. दु:ख त्रिविध हैं- आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।
5. वात्त, पित्त, कफ के वैषम्य से होने वाले रोग आदि से उत्पन्न शारीरिक और काम आदि से जन्य मानस दु:ख आध्यात्मिक हैं।
6. सांख्यायते अनया, इस विग्रह में सम् उपसर्गपूर्वक व्यक्तायां वाचि विद्यमानात् चक्ष् धातु के करण अङ् प्रत्यय में, स्त्रीत्व की विवक्षा से टाप् प्रत्यय से संख्या शब्द निष्पन्न होता है। इसमें संख्या है, यह संख्या शब्द से अण् प्रत्यय में सांख्य है। अथवा सांख्यायाइदम्, यह विग्रह संख्या शब्द से अण् प्रत्यय में सांख्य है।

टिप्पणी

7. संख्या सम्बन्धी सांख्य है, सम्यक् विचार अथवा सम्यक् ज्ञान इसमें, वह सांख्य है।
8. महर्षि कपिल
9. कपिल के शिष्य आसुरि, आसुरि का शिष्य पञ्चशिख।
10. सांख्य सप्तति
11. विज्ञानभिक्षु द्वारा
12. सांख्य प्रवचन सूत्र वृत्ति

उत्तर-12.2

1. प्रकृति और पुरूष सांख्य मत में नित्य दो तत्व हैं।
2. जब पुरूष भ्रमवश बुद्धितत्व के साथ स्वयं के तादात्म्य का अनुभव करता है तब बुद्धिगत सुख, दु:ख को स्वयं में आरोपित करके मैं सुखी हूँ, मैं दु:खी हूँ, ऐसा चिन्तन करता है।
3. सत्वपुरूषान्यताख्याति ही पुरूष के दु:ख ध्वंस रूप मोक्ष का कारण है।
4. सत्व, रजस् की साम्यावस्था ही प्रकृति है।
5. सूक्ष्म होने के कारण।
6. भेदों के परिमाण से, समन्वय से, शक्ति की प्रवृत्ति के कारण, कारण कार्य के विभाग से, अविभाग से और वैश्व रूप का।
7. अव्यक्त स्वयं से उत्पन्न बुद्धि आदि में व्याप्य होकर रहता है, अत: अव्यक्त व्यापी है।
8. प्रकृति के कार्य की प्रकृति के अनुमान में लिङ्ग है।
9. नहीं, सत्व, रजस्, तमस् प्रकृति में तादात्म्य से रहते हैं। उन गुणें के प्रकृति स्वरूप के कारण।
10. सत्व गुण ही लघु और प्रकाशक है।
11. रजो गुण उपष्टम्भक और चल है।
12. तमो गुण गुरू और आवरणकर्ता है।
13. प्रदीप यहाँ उदाहरण है।

उत्तर-12.3

1. पुरूष के संघाताभाव से, संघात के ही परार्थत्व से।

2. नहीं, प्रपञ्च-उत्पत्ति में पुरूष का सम्बन्ध मात्र अपेक्षित है।
3. चेतन और अविषय होने के कारण पुरूष साक्षी है।
4. जनन-मरण के प्रतिनियम से, अयुगवत् प्रवृत्ति से और त्रैगुण्यविपर्यय से।
5. आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, पञ्च महाभूत हैं।
6. वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ है।
7. पुरूष के संयोग वश जब प्रकृति में गुणों का वैषम्य होता है तब प्रकृति के महत् आदि क्रम से प्रपञ्च की सृष्टि होती है।
8. प्रकृति से महत् तत्व उत्पन्न होता है। बुद्धि अथवा सत्व, उसके पर्याय शब्द हैं।
9. महत् तत्व से अहंकार उत्पन्न होता है।
10. तामस् अहंकार से उत्पन्न होते हैं।
11. पुरुष
12. सात्विक अहंकार से पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं।

उत्तर-12.4

1. असत् ही कार्योत्पत्ति को प्रतिपादित करते हैं।
2. चेतन ब्रह्म से उत्पन्न होता है।
3. नैयायिक ही आरम्भवादी हैं।
4. सत्कार्यवाद ही सांख्यों का कार्यकारणविषयकवाद है।
5. कार्य कारण व्यापार से पूर्व कारण में सत् (विद्यमान रहता है)।
6. पाँच। वे हैं- असदकरणात्, उपादानग्रहणात्, सर्वसम्भवाभावात्, शक्तस्य शक्यकरणात् और कारणभावात्।
7. सांख्य मत में तीन प्रमाण हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।
8. प्रमा का करण प्रमाण है। और वह असन्दिग्ध, अविपरीत, अनधिगतविषया चित्तवृत्ति है।
9. प्रमा पौरूषेय बोध, प्रमाण जन्य है।
10. आप्त तो भ्रम-प्रमाद-विप्रलिप्सा-करणापाट-वरहित यथार्थवक्ता है।

॥ बारह पाठ समाप्त॥